International Journal of Research Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र

डॉ मंजु तॅवर
एसोसिऐट प्रोफेसर, सत्यवति कॉलेज
अशोक विहार,
नई दिल्ली

हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड–2 में प्रकाषित पत्रावली की है श्रृंखला में मुकुन्द द्विवेदी के संपादन में 'पत्र हजार प्रसाद द्विवेदी' राजकमल प्रकाषन की ओर से प्रकाषित किया गया है। इस संग्रह में प्रकाषित यद्वपि कुछ पत्र ग्रंथावली के ही हैं और कुछ अन्य पत्रिकाओं में भी प्रकाषित हो चुके हैं, तथापि इसमें कुछ अनछुए पत्र भी प्रकाषित किये गये हैं। द्विवेदी जी ने अपने जीवन काल में अनगिनत पत्र लिखे होंगे, किन्तु ''सभी पत्र प्राप्त नहीं हो सके, जे भी प्राप्त हुये हैं उनमें से कुछ चुने हुए पत्र इस संग्रह में प्रकाषित किये जा रहे हैं'' पृष्ठ 3 । हिन्दी साहित्य में पत्रों को अभी विधा के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। पर इतना तो जरूर हे कि पत्र किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में जिते सहायक होत हैं, उतना कोई और माध्यम नहीं। साहित्यकार अपने साहित्य से हटकर अपने पत्रों में ही स्वयं को खोल पाता है। विषेषकर अपने परिचितों, धनिष्ट मित्रों और अपने संबंधियो को लिखे गये पत्रों में। द्विवेदी जी के पत्रों में चाहे वह पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा गया हो अथवा श्रीमती शीला सिन्धु को या अन्य किसी अपरिचित पाठक को सर्वत्र एक स्वतःस्फूर्त सहजता मिलती है। अपनी कमजोरियों, आर्थिक दुरावस्था, सामाजिक अर्न्तन्द्व आदि सबको बिना किसी मुखौटे व्योमकेष शास्त्री के खोलकर सामने रख दिया है। द्विवेदी जी के पत्रों का यह अध्ययन उनके वयक्तिगत जीवन को समझाने में तो सहायक होगा ही, साथ ही नके साहित्य की भावभूमि को भी समझाने में उपयोगी होगा। 9–3–79 को 'पुनर्नवा' के संबंध में श्री राजनारायण को लिखे गये पत्र का यह अंष उपन्यास के गूढ़ांष का खुला आईना है – ''मेंरे मन में हलदीप हरदोई नहीं हैं, मेरे गॉव के पास का हल्दी गॉव है, जो स्थानीय ष्विास के अनुसार लोरिक का कार्यक्षेत्र था। बहुत से स्थान जैसे द्वीपखण्ड (आधुनिक दुबहड़), च्यवनभूमि(वर्तमान जबही), बोध सागर (वर्तमान बोहा ताल), सिसेष्वर महादेव (वर्तमान छितेष्वर नाथ), मेरे गॉव (ओझवलिया) के इर्द–गिर्द के स्थान हैं।''

पुस्तक में कुल 153 पत्र संकलित हैं, जो सन् 1934 से आरंभ होते हैं। यानि के द्विवदी जी के शांतिनिकेतन जाने के बाद अर्थात् द्विजत्व प्राप्ति के 4 साल बाद 1930 की 7

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

नवंबर को द्विवेदी जी शांतिनिकेतन पहुंचें और 8 नवंबर को उन्होंने अध्यापन कार्य आरम्भ किया था। इसे वे द्विजत्व प्राप्ति का दिन कहते थे। मृत्युउपरांत 1979 तक वे पत्र लिखते रहे। इस तरह द्विवेदी जी की जिंदगी के समतल मैदानों से लेकर खंडहरों औ खाइयों तक के 45 वर्ष इन पत्रों में कैद हैं। पत्र तो इससे पहले भी निष्चित रूप से लिखे गये होंगे, साहित्यिक मित्रों को न सही, पर परिवारजनों को तो अवष्य ही लिखे गये होंगे। उनको प्रकाषित क्यों नहीं किया गया ? यदि ऐसा किया जाता तो द्विवेदी जी को समझने में और आसानी होती।

पहला ही पत्र व्योमकेष शास्त्री उर्फ हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। उनके औपन्यासिक मुखौटे ने पत्र में भी बड़ी सहायता की है। भीष्म साहनी के द्वारा 'पुनर्नवा' पर द्विवेदी जी की प्रतिक्रिया जानने की इच्छा पर द्विवेदी जी तो कुछ नहीं कह पाये, किन्तु उनके 'अभिन्न मित्र व्योमकेष शास्त्री' ने सब कुछ खोलकर सामने रख दिया। उल्लेखनीय है कि 'पुनर्नवा' तक आते आते व्योमकेष शास्त्री विलुप्त हो गये थे, शायद इसी कारण उन्हें इस पत्र की आवष्यकता पड़ी। आकस्मिक नहीं है कि 'अनामदास का पोथा' में वह पुनः प्रकट हो गए। इस पत्र में व्यामकेष शास्त्री ने स्वयं स्वीकार किया है कि जब वे नीरस कामों से थक जाते हैं, तो इस प्रकार की गप्पों की रचना में विष्वास पाते हैं। इसके अलावा भी 'पुनर्नवा– की रचना के पीछे एक और कारण था। 'कालिदास की लालित्य योजना' लिखते समय उनकी चित्त में अनेक मूर्तियां उभरी थीं, जिन्हें वे स्थापित करना चाहते थे। वे उबे हुये थे। वह चाहते थे कि 'भावानुप्रवेष' को प्रत्यक्ष दिखायें। और इसलिये उन्होंने 'पुनर्नवा' आरंभ किया था। मगर उन्हें स्वयं लगता है कि कालीदास को वे इस ग्रंथ में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित नहीं कर पाये। उभारते–उभारते रूक गये। अतः उनकी इच्छा थी कि इनक मी को पूरा करे लें, भले ही उन्हें कोई और गप्प मारने की योजना बनानी पड़े। स्पष्ट है कि इस योजना की परिणति 'नामदास का पोथा' के रूप में हुई।

वैसे कथानक की दृष्टि से व्योमकेष शास्त्री की 'पुनर्नवा' बहुत षिथिल नहीं जान पड़ती। उसकी षिथिलता इसी बात में है कि उसका आरम्भ कालिदास के भावों को उजागर करने के उद्देष्य से हुआ था। 'पुनर्नवा' नाम भी कालिदास के एक श्लोक से प्रेरणा ग्रहण करके लिया गया है। त्योमकेष शास्त्री के अनुसर द्विवेदी जी को इस बात का दुःख है कि आधुनिक कथाकार यह भूल जाते हैं कि कथा में साहित्य–रस का होना आवष्यक है। कोई शक्तिषााली कथाकार इसका प्रयोग करे तो परिाम अच्छा भी हो सकता है। और यह प्रयोग किया गया 'पुनर्नवा' के रूप में। 'पुनर्नवा' के पात्र वास्तविक जीवन के लिये गए है। वह पूरा परिवेष द्विवेदी जी का अत्यंत परिचित एवं आत्मीय है, जिसमें कथा को जड़ा गया है। इसी पत्र में यह भी उल्लिखित है कि 'बाणभट्ट की

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

आत्मकथा' में द्विवेदी जी ने यत्र तत्र अपने श्लोक भी जोड़ दिये थे। कराला देवी की स्तुति ऐसा ही श्लोक है।

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम सबसे अधिक 68 पत्र संकलिप्त किये गये हैं, जो सन 1934 से आरंभ होते हैं। यानि की संकल्पित पत्रों में प्राचीनतम पत्र चतुर्वेदी जी के ही नाम है। अपने पत्रों में द्विवेदी जी चतुर्वेदी जी को श्रद्वेय पंडित जी से लेकर प्रिय चतुर्वेदी तक से संबोधित करते हैं। इनके पत्रों में द्विवेदी जी की हरसीवन खुली हुई है। शांतिनिकेतन जाने से पूर्व की पापड़ बेली जिंदगी का एकमात्र पत्र भी चतुर्वेदी जी के ही नाम है, जिसे वे सिर्फ चतुर्वेदी जी के ही सामने व्यक्ति कर सकते थे। 'आदमी का सबसे बड़ा दुष्मन गरीबी ने उन्हें किस हद तक उत्पीड़ीत किया, इसका कुछ अंदाजा इस पत्रांष से लगाया जा सकता है – 'मेरे घर की आर्थिक स्थिति की बात न कहना ही ठीक है। मुझे याद आता है कि पिताजी ने बड़ी कठिनाई से गांव के एक व्यक्ति से 40 रूपये उधार लिये थ्झे। यह मेरी इन्टरमीडिएट की भर्ती करायी की प्रथ्झम बलि थी। मैं इसके बाद केवल क्लास में बैठता और फीस नहीं देता। हिन्दू विष्वविद्यालय में उस समय बहुत से गरीब षिष्य थे, जबदस्ती क्लास में में बैठा करते थे। साल के अन्त में ध्रुव जी और मालवीय जी की कृपा से उनका उद्वार हो जाया करता था। मैं भी उसी श्रेणी में था। कई बार चेतावनी मिली, पर मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं थी। संस्कृत कॉलेज में 15 रूपये वृति मिलती थी और 5 रूपये का टयूषन करता था। कुछ खाता कुछ बचाकर घर भेज देता था। घर की अवस्था बडी दयनीय थी। आज की याद करता हूॅ तो रायें खड़ें हो जाते हैं। मैंने सुना था कि ध्रुव जी के पास जाने से सब ठीक हो जाता है। मैं डरते डरते प्रिंसिपल ध्रुव के कमरे में गया। वे कुछ झल्लाये हुये बैठे थे, शायद मेरे जैसे और भी लक्ष्मी से त्यक्त पुत्र उनकी सेा में हाजिर हो चुके थे । मैंने अपनी कहानी सुनाई। बीच में ही झल्लाकर बोल उठे जाओं मैं नहीं सुनना चाहता। युनिवर्सिटी गरीबों के लिये नहीं है। जाओ ईंटा ढाओ। मेरा अनुमान है ि कवे किसी कारण गुस्से में थे नही ंतो उनका स्वभाव दयालु था परन्तु मुझे तो जैसे बाण लग गया। मैंने आधी बात जहां की वहीं छोड़ दी ओर उठकर प्रणाम करके तुरंत लौट आया। वे दरवाजे तक जाते मुझे देखते रहे। संभवतः मुझे पागल समझा। मेरी पढ़ाई वहीं रूक गई। मेरे एक अध्यापक ने कहा कि चलो तुम्हें फिर से ध्रुव जी के पास ले चलता हूॅ। गरज पड़ती है तो सौ बार जाना होता है, पर मेरी रीढ़ टूट चुकी थी। मैं नहीं गया। बाद में मैनें केवल अंग्रेजी लेकर परीक्षा दी। वह भी एक मजेदार कहानी हे। परीक्षा मे फीस बहुत कम लगती थी। पर उतनादे सकतने लायक पैसा भी मेरे पास नहीं था। मेरे पास ोढ़ने के लिये कपड़े भी नहीं थे । मुझे किसी से मांगने की कला भी नहीं आती थी। सो मैंने बगल में पोथी दबाई कथा बांचने चल गया। कथा सात दिन तक हुई। और आठवें दिन चढ़ावा चढ़ा। 35 रूपयें, एक रजाई, कुछ साड़ियां, कुछ कपड़े, कुछ धोतियां

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

और प्रचुर अन्न मुझे मिला। मेरे जीवन में इससे बड़ी सहायता न कभ मली और न ही मिलेगी।''
अतः कथा बांची गई मजबूरी में, आजीविका के लिए शौकिया नहीं। आकस्मिक नहीं है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा'में बाण अपनी जवानी के बेकारी के दिनों में कथा बाँचा करता था। उसका क्षेत्र भी वही–काश्कषी का जनपद।

अब आगे पढ़ाई का तो प्रष्न ही नहीं उठता था। अब तो चाहिये थी नौकरी। कथा भी आखिरी कब तक बाँची जा सकती थी? और काशी में नौकरी मिली नहीं। आखिरकार हारकर जाना पड़ा शान्ति–निकेतन। क्या करते, पेट पालने के लिए कुछ तो करना ही पड़ता।मजबूरी थी। पर विधाता की इच्छा देखिये कि यही मजबूरी बरदान बन गई। शान्ति निकेतन में जहाँ उन्हें रवीन्द्रनाथ टैगोर, क्षितिमोहन सेन, दीनबन्धु एण्ड्रूज जैसे महान लोगों मे निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला वहीं 'विशाल भारत'जैसी पत्रिका निकानले वाले बनारसी दास चतुर्वेदी जी का सानिन्धय और फिर आश्रम का सम्पूर्ण बातावरण। गुरूदेव से उन्होंने क्या पाया? इसके विषय में कहने की आवश्यकता नही है। द्विवेदी जी के प्रत्येक कार्य की प्रेरणा में कहीं न कहीं गुरूदेव ही है। द्विवेदीजी गुरूदेव के पुण्य–दर्शनों को 'अपने अनेक जन्मों के पुण्यों का उदय 'मानते थे। टैगोर की मृत्यु के बाद उन्हें सारा आश्रम ही वीरान लगने लगता है और अपनी व्यथा को कुछ काम करने के लिए चतुवेंटी जी के पास पत्र लिखते हैं। ओर अन्ततः उनकी इच्छा व प्रेरणा को अपने साहित्य के माध्यम से जीवन्त बनाने का संकल्प लेते है। एण्ड्रूज साहब के प्रति उनके हृदय में गहरी आस्था है। कारण एक बार चतुर्वेदी जी ने कभी यह आशंका व्यक्त की होगी कि एण्ड्रूज साहब के जीवन चरित के विषय में कुछ लिखने के कारण कहीं वे प्रतिवाद का कारण तो नही बन जायेंगे, क्योंकि एण्ड्रूज साहब अंग्रेज थे और उस समय स्वाधीनता संग्राम चल रहा था। इस आशंका को निराधार बताते हुए वे एण्ड्रूज साहब के सच्चे अर्थों में मानव होने की सार्थकता पर एक लम्बा–चौड़ा पत्र लिखते हैं और साथ ही इस बात की जोरदार दलील करते हैं कि उनके विषय में अवश्य लिखा जाये।

चतुर्वेदी जी के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा और प्रेम है। लेखकिय जीवन में वे चतुर्वेदी जी के योगदान को ध्रुव नक्षत्र के समान मानते है। अपने प्रत्येक कार्य में वे चतुर्वेदी जी की सहमति चाहते है। साहित्यिक हो या पारिवारिक हर बा रवह चतुर्वेदी जी को लिख भेजते है। चतुर्वेदी जी के दुबले होने पर उन्हें चिन्ता होने लगती है। ऐसी अवस्था में वे स्वयं गुरूदेव का 'विपदे मोर रक्षा कर ए नेह मोर प्रार्थना'यह भजन दुहराया करते थे और

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

इससे अपनी मानसिक अशान्ति से काफी राहत महसूस किया करते थें। अतः वे इसी उद्देश्य से चतुर्वेदी जी के पास भी यहीं भजन लिख भेजते है।

इन चारों के सनिध्य के सामने पंडित जी को दुनिया के सारे सुख–आराम फीके लगते है। निःसन्देह उन्हें शान्ति निकेतन में सुख था। अपने कितने ही उल्लेखनीय कार्य उन्होंने शान्तिनिकेतन में ही किए। 'कबीर'जैसा ग्रन्थ शान्तिनिकेतन की ही देन है। शान्तिनिकेतन मे रहकर ही उन्होंने 'हिन्दी भवन'उस समय प्रचलित हिन्दी की सबसे बड़ी संस्था काशी नागरी प्रचारिणी सभा से अधिक भी नही तो कम से कम बराबर अवश्य होनी चाहिये। जिसके लिए उन्होंने जी तोड़ कोशिश की । वे हिन्दी भवन को एक सांस्कृतिक केन्द्र बनाना चाहते थे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखत हुए ही उन्होंने हिन्दी भवन की दीवरों पर नन्दलाल बसु, जिन्हें द्विवेदीजी मास्टर मशाय कहते थे, इसी प्रकार की चित्रकारी करवाई थी।

बहुत कुछ किया और पाया उन्होंने शान्तिनिकेतन में, पर फिर भी 'कुछ कम कर सकने की कचोट उनके मन को कुरेदती रहती थी। चतुर्वेदी जी को एक पत्र में वे लिखते हैं–''शान्तिनिकेतन में रहकर जो कुछ साहित्यक काय्र कर सकता हूँ, वह नहीं कर सकता। मुझे 30–35 पीरियड प्रति सप्ताह काम करने के बाद भी प्रतिदिन पेट की चिन्ता के लिए कई अनावश्यक यान्त्रिक काम करने है। मेरी बहुत इच्छा थी कि विंटरनित्स के भारतीय साहित्य के ढंग पर समस्त भारतीय साहित्य का एक परिचयात्मक इतिहास लिखूँ, पर 'रूटीन वर्क 'के बोझ से ऐसा करना एकदम असंभव है।

अपनी जन्मभूमी के प्रति आकर्षण तो उनमें था ही । फिर साथ ही हिन्दी–भाषी प्रदेश में रहकर साहित्य की कुछ अधिक सेवा करने की भी आशा थी। यधपि काशी और विश्वभारती दोनों ही उनके लिए माता के समान थी, एक ने जन्म दिया, तो दूसरी ने जीने योग्य बनाया, फिर भी काशी के लिए उनके मन में एक हूक थी,जो बार–बार उद्वेलित करती रहती थी। इसी के आकर्षण–विकर्षण में एक खासा द्वन्द्व उनके मन मे चलता रहता था।

आखिरकार 18 वर्ष बाद हिन्दू विश्वविधालय से हिन्दी विभाग के आचार्य पद के लिए आमन्त्रण मिला। एक क्षणके लिए लगा होगा कि सोने में सुहागा है। जिस काशीने उन्हें पहले बंगाल में फेंक दिया था, उसी ने फिर से बुलाया,देर से ही सही। अतः एक ओर तो काशी जाने के लिए हूक,फिर कुछ अधिक करने की आशा और ऊपर से 'गरिब का सबसे बड़ा दुश्मन पेट'की पूर्ति अर्थात् पैसा अधिक मिल रहा था। और क्या चाहिये था

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

पर फिर भी वे पहली बार काशी नहीं गये, काशी जो उनका स्वप्न था, जिसके एक–एक कण में आकर्षण था, एक–एक दर्शन में उन्माद है। आखिर क्यों? इसका उत्तर भी पत्रों में ही मिलता है।

एक ओर तो कुलपति का आमन्त्रण था और दूसरी ओर प्रतिद्वन्द्वियों के काशी से आने वाले धमकी भरे पत्र और फिर विश्वभारती का दुलार। अजीब सी अन्तर्द्वन्द्वकी स्थिति थी, जिसमें एक ऐसी पीड़ा थी, जिसने अन्तरतर को कहीं दूर तक कुरेद दिया था। इस पीड़ा और द्वन्द्वकी अभिव्यकित हुई 'शिवमंगल सिंह सुमन'को लिखे गये पत्र में– 'काशी से कुछ ऐसे पत्र आये और अब भी आ रहें है जो बहुत घृणास्पद है। 'घृणास्पद'शब्द मैं बड़ी व्यथा के कारण व्यवहार कर रह हूँ। इनके लिखने वालों में कहीं कोई मनुष्योचित भाव है ही नहीं। केवल निरूत्साहित करना, धमकी देना, आखबारी कतरने भेजना, गाली–गलौच करना, यही क्या सज्जन ऐसे, जो वृद्धावस्था में प्रपंच छोड़ने के उद्देश्य से काशीवास कर रहे है। केवल इन पत्रों के कारण मन मेंआता है कि इस बार स्वीकार कर लूँ। '' पर ऐसा किया नहीं, परिवारजनों कि इच्छा के बावजूद, क्योंकि इसका निर्णय छोड़ दिया था अपने अन्तर्यामी पर और अन्तर्यामी पहले तो चुप, पर फिर बोले कि '' यह भी अनर्थ और क्रोध का निर्णय होगा।'' मनुष्य'बनना ही मनुष्य का कर्तव्य है।'

और अन्तत'यही सोचकर शान्त हो गये–

''हम निषपापी जनम के, सहे अबोल कुबोल।

मानव नेकु न अनख हम, जानत अपनों मोल।''

अब चित्त कुछ शान्त जान पड़ा । ऐसा लगा कि अभी विश्वनाथ जी बुलाना नहीं चाहते। जिस दिन वे चाहेंगे उस दिन किसी और को इतना क्षोभ न होगा। और रमताराम ने हृदय से प्रार्थना की कि उन लोगों का क्षोभ दूर हो, वे अपने योग्य आसन पर प्रतिष्ठित हों और संसार के सभी प्राणियों से – इस अकिंचन से भी प्रेम करें।

बला टल गई। पर दो बर्ष बाद फिर बुलाया काशी ने। इस बार अतिरिक्त आग्रह के साथ। कहने को तो मुँह माँगी मुराद मिली थी। पर नहीं। इस बार स्थिति पहले की अपेक्षा कुछ भिन्न थी। इस बीच वेतन बहुत अधिक बढ़ा दिया गया था। शान्तिनिकेतन में सबसे ज्यादा यानि कि क्षितिमोहन सेन और नन्दलाल बोस से भी ज्यादा। फिर बच्चों की पढ़ाई तो मुफत थी ही। साथ ही मकान में भी दो कमरे और बढ़वा दिये गये थे। पर इनके सामने काशी की क्या तुलना ? यघपि काशी में स्थिति इस बार भी अच्छी नहीं

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

थी। विरोध अब भी था। पर भोलानाथ ने सोचा कि विरोध ज्यादा नहीं टिकेगा और अन्ततः काशी आने का निर्णय कर ही लिया । पर इसके बाद भी अपनी मनःस्थिति के बारे में शिवमंगल सिंह'सूमन'को लिखते है– बीस वर्षा का दुःख –सुख का सम्बन्ध है। टूटते–टूटते भी बाँध रहा हैं। मेरी मानसिक स्थिति की आप कल्पना कर सकते है।''

इस मनःस्थिति में काशी आये। हुआ वही जिसकी आशंका थी। प्रतिद्वन्द्वियों का असहयोग। वही ईर्ष्या, वही द्वेष। द्विवेदी जी का धैर्य डोलने लगा। बस शुक्र इतना था कि वयक्तिगतरूप से सबका व्यवहार ठीक था। फिर भी द्विवेदी जी का अन्तरतर कराह उठा। ऐसी ही मनःस्थिति में 31.08.40 को उन्होंने सुमन जी को लिखा–मैं भीतरकी मार बर्दाश्त नहीं कर पा रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि मेरा पतन हो गया है। यह बात किसी तरह मन से निकल नहीं रही है। जो मनुष्य अपनी ही आखों में गिर जाये उससे बढ़कर दयनीय कौन हो सकता है? मैं नहीं जानता था शायद जान– बूझकर नहीं जानना चाहता कि इस प्रकार सोचने को कारण क्या हैं। पर मन छोटा हो गया है।'' पर सब क्या करते? धीरे–धीरे मन को समझाना पड़ा कि अब यहीं रहना हैं। पर अन्दर की बात 6 महीने बाद लिखी–''मेरा वष होता तो मैं शान्ति–निकेतन से आता ही नहीं।''

इस पश्चाताप के मूल में उन्हें प्रतिद्ववन्द्वियों के किन–किन हथकंड़ों का सामना करना पड़ा, इसका कोई जिक्र इन पत्रों में नही है। पर इनता सर्वविदित है कि 10 साल बाद यानि 1960, में उन्हें काषी ने फिर फेंका। इस बार पहुँचे चण्डीढ़ में सात साल रहे। पर विडम्बना देखिए कि काषी ने सात साल के बाद फिर बुलाया, बड़े स्वागत के साथ। वही पुराना हिन्दी विभाग का आचार्यपद मिला। पर विरोधियों ने फिर जाल बिछाया और कुर्सी छिन गई। क्योंकि इसके बाद वे वहीं कभी निदेषक अैर कभी रेक्टर पद पर काम करते रहे। जीवन के अन्तिम दिनों में ' उत्तर प्रदेष हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष रहे।

डा0 विष्वनाथ प्रसाद तिवारी जी के नाम लिखे गए दो पत्र संकलित किए गए है। पत्रों से ज्ञात है कि तिवारी जी के द्विवेदी जी के साथ बड़े ही आत्मीय संबंध रहे हैं। 22.03. 1976 को तिवारी जी को लिखे पत्र में वे लिखते हैं – ''अतिवादी विचारधारायें हमेषा ही रही हैं और रहेंगी। सन्तुलन का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। हमने सुना है कि आजकल सन्तुलनवादी शब्द एक प्रकार की कुत्सा का द्योतक हो गया है। मैं समझता हूँ कि पुरानी कहावत ही ठीक है – 'सुनना सबकी, करना मन की।'

पत्रों से ऐसा ज्ञात होता है कि द्विवेदी जी जन्म से तो तुलसीदास थे और कर्म से कबीर। तुलसी के समान ही उनका भी जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। किन्तु द्विवेदी तुलसीदास को अपने से अधिक भाग्यशाली मानते थे क्योंक उनके माता पिता ने

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

उन्हें जन्मते ही फेंक दिया था। किन्तु द्विवेदी जी की मातृभूमि काषी ने ऐसा नहीं किया उसने न फेंका ही और न रखा ही। कबीर से कुछ कुछ समानता इस रूप में कि जिस प्रकार द्विवेदी जी के कबीर अस्वीकार का अपार साहस लेकर पैदा हुए थे उसी भांति कबीर के द्विवेदी जी भी कुछ कम नहीं थे। फिर दोनों को ही अपने देष काषी न जो फेंका तो ठौर शांतिनिकेतन में मिला। उल्लेखनीय है कि द्विवेदी जी से पहले हिन्दी साहित्य में कबीर को कवि के रूप में मान्यता नहीं मिली, बकि बंगाल में आचार्य क्षतिमोहन सेन 1910 में ही कबीर के वचनों का संग्रह प्रकाषित करवा चुके थे इतना ही नहीं 1914 में रवीन्द्रनाथ टैगोर 'वन हंडेड पोएम्स आफ कबीर ' प्रकाषित करवा चुके थे।

पत्रों से साफ जाहिर होता है कि पंडित जी हंसने में माहिर थे। वे अपने पत्रों में भी अपने हंसने की घटना की चर्चा बिना किये नहीं रहते। कभी कभी वे अपने नाम पर ही चुटकी लेनी शुरू कर देते हैं। पत्र में ही उल्लिखित है कि उनके जन्म के समय उनके परिवार वालों को कहीं से हजार रूपये की आदमनी हुई थी इसलिये उन्होने उनका नाम 'हजारी' रख दिया। इसी घटना के चलते द्विवेदी जी चुटकी लेते हैं कि एक बार चतुर्वेदी जी उन्हें एक साथ 1000 रूपये देने क बात लिखते हैं तो इस पर वे लिखते हैं कि इतनी बड़ी रकम मुझे एक साथ नहीं दीजिए अन्यथा अब नाम को हजारी से दो हजारी बनाना पड़ेगा।
हिन्दी साहित्य और भाषा के प्रत वे इतने समर्पित थे कि अपना तिल तिल गलाकर भी उसे संबंधित करना चाहते थे। हिन्दी की दरिद्रता पर उन्हें दुख होता था। किन्तु इस क्षेत्र में वे नयी पीढ़ी के प्रति आषावान थे ि कवे हिन्दी की प्रतिद्वंदिता बंगला या उर्दू से नहीं बल्कि रूसी या अंग्रेजी से समझते हैं। बंगाल में रहते हुए उन्होंने अनुभव किया था कि वहां के सौा सीसदी लोग हिन्दी साहित्य को तो जानने के इच्छुक हैं। पर हिन्दी को नहीं। इसके कारण पीछे वे हिन्दी की दरिद्रता ही मानते थे। दरिद्रता का कारण है – श्रेष्ठ साहित्यकारों का अभाव'। हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्यकारों के न होने को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने एकमात्र प्रेचन्द को श्रेष्ठ साहित्कार माना। इस पर भी वे राष्टभाषा का डिण्डिम घोष करने पर रोष प्रकट करते हैं – 'क्यों हिन्दी को हिन्दी नहीं कहा जाता, क्यों उसे मातृभाषा नहीं कहा जाता, क्यों इस बात को स्वीकार करने में हम हिचकते हैं कि उसके द्वारा करोड़ों का सुख दुख व्यक्त होता है ? राष्टभाषा और तिजारत की भाषा, राजनीति की भाषा कामचलाउ भाषा यही चीज प्रधन हो गई है और मातृभाषा, साहित्य भाषा, हमारे रूदन हास्य की भाषा गौण। हमारे साहित्यिक दरिद्रद्य का इससे बढ़कर अप्रदर्षन और क्या होगा। यह पत्र 1938 में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा गया था। इस दरिद्र के शमन के लिए उन्होंने क्या किया, इसके विषय में कहने ी आवष्यकता नहीं है। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदीको लिखे गए पत्रों का बहुत बड़ा अंष

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

इसी चिन्ता की अभिव्यक्ति है कि हिन्दी साहित्य को समृद्व एवं सम्पन्न कैसे बनाया जाए।

'विष्वभारती' पत्रिका का प्रकाषन भी इन्हीं प्रयासों का एक अंग है। इसका प्रकाषन सन् 1942 में आरंभ हुआ था इसकी सफलता के लिये उन्होंने जीतोड़ कोषिष की । कितनी ही परेषानियों का सामना करना पड़ा। आर्थिक तंगी की तो बात ही और है यहां तक कि उन्हें अपेक्षित लोगों क लेखों का सहयोग ाी प्राप्त नहीं हुआ। जिन लोगों को उन्होंने शक्ति भर लिखकर दिया, उन्होंने भी उस वक्त सहायता नहीं की। इसका कुछ अन्दाजा चतुर्वेदी जी को 20.04.1942 को लिखे पत्र से लग सकता है – 'कई सज्जनों को पत्र लिख लिख कर हार गया हुॅ। न तो कोई जवाब ही आता है न लेख शायद हिन्दी क्षेत्र में बिना रूपयों के लेख मिलते ही नहीं। या फिर कोई और कारण हे। लगभग 150 प्रतियां सनालोचना और भेट में भेज चुका है। एक दर्जन से अधिक लोग एसे नहीं है, जिन्होंने पहुंच की भी सूचना दी हो। .... मैं आपसे पूछता हूॅ कि क्या एसा ही होता है। मैंने उन सब लोगों को शक्तिकर लिखकर दिया है जिन्होंने मुझसे मांगना ठीक समझा है। असुविधाओं के होते हुए भी। शायद इसीलिए मैंने म नही मन आषा की थी कि लोग मेरी भी सुनेंगे। 'विष्वभारती' पत्रिका के वे सम्पादक, लेखक, मैनेजर क्लर्क, प्रूफरीडर यनि कि सर्वेसर्वा थे। उस वक्त उन्हें दम मारने की भी फुर्सत नहीं थी। लिखना पढ़ना तो हवा हो गया था। पर मजे की बात देखिये फिर भी मैं असंतुष्ट नहीं हूॅ। ''

इन पत्रों से जाहिर है कि देषटन और ललितकलाओं में उनकी अदभुत निमग्नता थी। सन 40 में वे विलेपार्ले, बम्बई गए। वहॉ रास्ते में उन्हें जंगल, पहाड़, नदी, नाले देखने में नवीन जीवन का अनुभव हुआ। उन्होंने मुकुन्द द्विवदी को लिखे गए पत्र में विष्वास व्यक्ति किया कि मैदान में रहने वाले लोगों को नई स्फूर्ति पाने के लिए प्रकृति के इस सौंदर्य को अवष्य देखना चाहिये। पंडित तो वे जरूर बनना चाहते थे, परन्तु ठूंठ पंडित नहीं। जीवन्त सरस ओर गतिषील पंडित। ऐसे ही वे थे भी। उनके भीतर सोया हुआ एक कवि भी है। जो रह रह कर जाग पड़ता है। षिवमंगल सिंह सुमन को लिखे पत्रों में तो वह अक्सर जाग पड़ता है। खुजराहों की कला देखकर भी कवि ही बन गए थे। पत्थरों को काटकर षिल्पियों ने ऐसा प्राण ढाल दिया है कि बस देखते ही बनता है। नारी मूर्ति का ऐसा समृद्व अंकन शायद ही कहीं संसाद में मिले। एक भी मूर्ति सीधी नहीं है। सबमें वक्रिया, सबमें भंगिमा, सबमे गति। कला की यह बोधी दृष्टि कालीदास की लालित्य योजना और मेघदूत : एक पुरानी कहानी मैं देखने योग्य है।

यद्यपि पत्रों में कोई भी पत्र बंगला में लिखा हुआ नहीं है, तथापि पत्रों से इतना तो स्पष्ट है कि उनको बंगला का पूरा अधिकार थ्ज्ञा एक बार गाड़ी में यात्राा करते समय द्विवेदी जी की भाषा सुनकर कुछ विद्यार्थियों ने उन्हें बंगाली ही समझ लिया था। द्विवेदी जी को शायद पौधे लगाने का भी शौक था। एक बार शांतिनिकेतन में काफी जोरों का तूफान

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

आया था, जिससे अन्य पेड़ों के साथ उनके पुदीने की क्यारी भी नष्ट हो गई थी जिसका दुख चतुर्वेदी जी के पत्र में व्यक्त करते हैं।

ज्योतिषाचार्य होने के बावजूद भी वह भाग्यवादी या नियतिवादी नहीं थे। हॉ, पर्दे के पीछे वाली सत्ता में जरूर विष्वास करते थे। षिवमंगल सिंह सुमन को लिखे पत्र में वे लिखते है कि ''पर्दे के पीछे वाली सत्ता सब कुछ कराती है।'' सुनाम या बदनाम होना सब कुछ उसी के हाथ में हैं। हम लोग निमित्त मात्र है। में कुछ नहीं कर रहा हूॅ। कोई और ही करा रहा हैं। फिर आगे लिखते है– 'मैं अच्छा आस्तिक कभी नहीं रहा। परन्तु बुरा नास्तिक भी कभी नही रहा है। बुरा आस्तिक दम्भी होता है और बुरा नास्तिक अहंकारी। मैं तो सुमन जी, एक अद्भुत मिश्रण हूॅ। मुझमें थोड़ा दम्भ है, पर अहंकार कम है।कभी– कभी सोचता हूॅ कि अहंकारी होता तो अच्छा था। '' पत्रों से ज्ञात होता है कि वे अपने समय की राजनीति के प्रति पूरी तरह जागरूक थे। 2.10.63 को चतुर्वेदी जी को लिखे गए पत्र में वे लिखते हैं– 'राजतन्त्र के स्थान पर लोकतन्त्र की जब स्थापना हुई तो आशा की थी कि स्थितीसुधरेगी पर सुधार बहुत अधिक नही हुआ । राजनीति अध्कि वयापक होती गई, बाकी चीजों का महत्व घटता गया। ऐसा तो कोई समय नहीं था जब कवि, चित्रकार मूर्तिकार और शास्त्रज्ञ राज्याश्रय की तलाश में घूमते न हों । पर मशीन की सभ्यता के विजयी होने के बाद स्थिति अधिक दयनीय हो गई।'' इसी संदर्भ में लिखते है कि ''यह अजीब बात है कि साहित्कार राजनीति से बुरी तरह प्रभावित होता जा रहा है पर राजनीतिज्ञ साहित्य से बहुत कम प्रभावित होता है।

द्विवेदी जी गुरूदेव का 'पथ आमारे पथ देखावे'अर्थात रास्ता दिखाता है, ये गीत अक्सर गुनगुनाया करते थे। जो साहित्यिक निष्ठापूर्वक ऐसी इच्टा लेकर निकल पड़ता है वह रास्ता खोज ही लेता है। द्विवेदी जी ने भी ऐसे ही रास्ता खोज लिया था। जिन्दगी के प्रति उनका दृष्टिकोण खेल के समान था– '' मैं मानता हूॅ कि दुनियॉ खेल का मैदान है। खेल में क्या हार क्या जीत। लड़के भी खेल में रोने से हिचकिचाते है। से इस दुनियॉ को खेल ही माना जाये। जब तक खेला जाये जब तक जमकर खेला जाये। हार जाये तो राम राम, जीत गये तो राम राम।''और ऐसी ही जिन्दगी जी है उन्होंने – हर हालत में रमताराम। उनके ये पत्र इन्ही अर्थों में उनकी जिन्दगी की सच्ची आत्मकथा हैं, तिल–तिलकर जलते हुए उस मोम की कहानी हैं, जिसने दूसरों को प्रकाश देना ही जाना है। पर इतना कुछ करने के बाद भी 'कुछ न करने के अहसास'की महानता को क्या कहा जाये?

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

सन्दर्भ

[1]. Dr. Manju Tanwar, " Acharya Hazari prasad dwivedi ke upanyaso me adhunik chetna", (1991)

[2]. Tiwari, P. K. (1997). Sahitya ka itihaas darshan evam aacharya hazari prasad dwivedi ke Hindi sahityetihas ka aalochaknatmak adhyayan (साहित्य का इतिहास दर्शन एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के हिंदी साहित्येतिहास का आलोचकनात्मक अध्ययन).

[3]. Tejveer, M. (2005). Aacharya hazari prasad Dwivedi ke upanyaso ka aitihasik evam saanskrutik adhyayan (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन).

[4]. Śarmā, H. (1992). *Ḍô. Hajārī Prasāda Dvivedī ke upanyāsoṃ meṃ nārī*. Ārādhanā bradarsa.

[5]. डाॅ प्रियम्वदा मिश्र. (2016). 'द्विवेदी जी के उपन्यास और स्त्री विमर्श'. *Global Journal of Multidisciplinary Studies*, *5*(3).

[6]. Dr. Manju Tanwar, "Sanskriti or Hazari Prasad Dwivedi", (2013)